गुरुवाणी

आपका भविष्य हमारे ऊपर निर्भर है तो मैं भी निःस्वार्थ भाव से आप सबकी इतनी सेवा करूँगा कि आपका भविष्य और आपके बच्चों का भविष्य उज्ज्वल हो जायेगा।

–पीठाधीश्वर बाबा सिद्धार्थ गौतम राम जी

अघोरेश्वर निनाद

अघोरान्ना परो मंत्रो। नास्ति तत्वम् गुरोः परम्।।

R.N.I.UPHIN-2000/3008 Postal No. VSI-E-01/2013-2015

वर्ष-१५, अंक १२, वाराणसी। मंगलवार ३० जून २०१५ ई० सहयोग राशि ४.२५

मानव

इस असार संसार में सृष्टि रचयिता द्वारा मानव या मनुष्य यानी नर-नारी का सृजन ही इसकी उत्कृष्टता को स्वयं सिद्ध करता है। मानव हाड़ मास का महज एक पुतला नहीं है न तो अन्य जीवधारियों की भांति इसके जीवन-निर्वाह की पद्धति मात्र आहार एवं प्राकृतिक प्रजनन तक सीमित की गई है बल्कि इसके शीर्ष पर मस्तिष्क रूपी अमृत का घड़ा स्थापित कर विवेक रूपी अथाह सम्पदा से सम्पन्न किया गया है। मानव अन्य प्राणियों से इसी आधार पर श्रेष्ठ है कि वह अपने विवेकानुसार निर्णय लेकर जीवन को व्यवस्थित कर लेने में सक्षम है।

मनुष्य का सद्विवेक, उसकी जीवन-पद्धति, उसकी दिनचर्या, उसके मानसिक शक्ति का झण्डाबरदार है जो विधाता ने शुभकर्म के फलस्वरूप पारितोषिक रूप से उसे प्रदान किया है। मानव की विभिन्न अवस्था का हम ध्यान करें तो शैशवावस्था से लेकर मृत्युपर्यन्त हर स्थिति, हर उम्र की दहलीज उसके लिये एक अलग अद्भुत नजारा लिये उपस्थित होती है, जिसे वह अपने विचारों से, भावनाओं से, अनुभूतियों से अनुभव का सगर्व साँस लेते हुए परमसत्ता की चरम-रचना का साक्षी सिद्ध होता है। साथ ही साथ सृष्टि के निर्माण से लेकर आज तक प्राकृतिक रूप से मानव के समुन्नत होने के लिये वेदों, शास्त्रों, पुराणों, उपनिषदों का निर्माण विधाता के ही सृजित शिल्पकारों द्वारा किया गया है ताकि वह सब कुछ हमें प्राप्त हों, जिसके हम अधिकारी है। यदि मानव के सृजनकर्ता द्वारा उसे विरासत के रूप में प्रकृति एवं वातावरण के अक्षय भण्डार के स्वामी के रूप में पैदा कर भेजा गया है तो इससे सिद्ध है कि वह इन सभी तत्त्वों, यानी दैवीय सम्पदाओं को अबाध रूप से उपभोग के लिये आया है, उसे एक प्राणमय शरीर प्रदान कर एक-एक अतुल्य अंगों को विधान से विन्यसित कर एक सुरम्य जीवन जीने का वरदान दिया गया है। उसके सहचर, अभिभावक, परिवारजन, कुटुम्बीजन सभी उसी मानव रूप में उस परमसत्ता के ही अंशभूत है जिन्हें एक दूसरे के साथ सामाजिकता एवं साहचर्य के बंधन में जीवन व्यतीत करने की छूट दी गई है तथा समस्त मानवों को मानवीय गुणों से ओतप्रोत होकर अपने प्रकृति में रमते हुए मस्त जीवन जीने की अपार संभावना उपलब्ध करायी गई है, बशर्ते इस दुर्लभ मानव जीवन का दुरुपयोग न हो, हम अपने विवेक को जाग्रत रखें जो उचित अनुचित, कृत्यों का निर्णय कर स्वयं मनुष्य को बताता भी रहता है। यद्यपि इस नश्वर संसार में जीवित प्राणियों में चींटी से लेकर हाथी तक को अपनी क्षुधा तृप्ति हेतु कार्य करने को विवश होना पड़ता है इसीलिये इस मृत्युलोक को कर्मक्षेत्र भी कहा जाता है। अतः जीवनधारी का कार्यशील होना उसका अपने को संचालित किये रहना प्राकृतिक रूप से अपरिहार्य आवश्यकता है। तथापि ईश्वर परमसत्ता, ब्रह्म अथवा प्रकृति ने इससे इतर मानव को अद्भुत क्षमताओं से परिपूर्ण कर उसके परम सुख की अनुभूति के लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

साथ ही साथ मानव को प्रदत्त अपरिमित सम्पदा के उपभोग हेतु कुछ मानकों को भी पालनीय होने की शर्त रखी गयी है, जिसमें अनुशासन, मर्यादा, सभ्यता, सादगी के साथ ही अन्य मानवीय गुणों को भी सम्भाल कर रखना तथा उसका इस्तेमाल अनिवार्य बताया गया है जो पीढ़ी दर पीढ़ी हमें अक्षुण भी रखती है, अन्यथा प्राकृतिक कोप के भी सहभागी बनने में देर नहीं लगती। यद्यपि यह तथ्य है कि ब्रह्म ही सत्य है यह जगत मिथ्या है परन्तु इस मानव देहधारी के द्वारा जो अभिनय किया जाता है। उसमें जीवंतता होनी चाहिए, अन्यथा अभिनेता अथवा अभिनेत्री को उचित पारिश्रमिक से वंचित होना पड़ता है, जिसके लिये वह स्वयं ही उत्तरदायी होता है तथा यदि भविष्य में भी नहीं सम्हलता तो सदा के लिये अभिशप्त मानव जिन्दगी ढोने को बाध्य हो जाता है। अस्तु यदि परमपिता, भूतभावन के द्वारा मानव को मानव बनाया गया है तो उसका भी पुनीत कर्तव्य है कि वह अपने आचरण से, व्यवहार से ताजिन्दगी जानबूझकर ऐसा कृत्य न करे, जो उसी के लिये खाई या कब्र सरीखे सिद्ध हो जाय। क्योंकि विधाता के न्याय पर अंगुली उठाना या अपने भाग्य को दोष देकर इसके लिये ईश्वर को दोषी मानना तो निपट नासमझी का पर्याय है।

अस्तु यदि हम अपने को मनुष्य योनि में पाते हैं तो अवश्यमेव हमारा आपका कृत्य पशु-पक्षियों के या अन्य जीवों की भांति महज ओद्र भरकर येन-केन-प्रकारेण जीवन जीना नहीं है बल्कि अपने साथ ही अपने सहचर मानवों के साथ ऐसा व्यवहारिक वातावरण बनाया जाना चाहिए जो अनुकरणीय हो, परहित में हो तथा अपने आस-पास के व्यक्तियों को भी शीतलता प्रदान करें, उन्हें आपसे प्रेरणा मिलें। आपके कार्य में ईमानदारी के साथ परमार्थ जुड़ा होना चाहिए क्योंकि वही आपके जीवन जीने की धर्मयुक्ति भी है, बड़े सरकार यानी परमपूज्य भगवान अवधूत राम जी की वाणी के अनुसार बिना युक्ति के भक्ति प्राप्त नहीं होती। भक्ति प्राप्त करना भी मानव के जीवन में उसके अतृप्ति को तृप्त करने जैसा है, प्यासे के द्वारा स्वच्छ, शीतल जल प्राप्त करने जैसा ही है इसीलिये आप हम जहाँ भी है, वहीं पर हमारे आपके कर्म करने की पूर्ण सुविधा है, साथ ही, वहीं पर एक मानव परिवार, समाज आपसे कुछ अपेक्षायें भी रखता है तथा परस्पर व्यवहार ही हमें परिवार या समाज में एक अभीष्ट स्थान देता है जिसमें विशुद्ध स्वार्थ को तिलांजलि देकर समाजहित में कार्य को सराहनीय कहा जाता है, कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने बड़े ही बेवाकी से मानव को उसके कर्त्तव्य से ही परिभाषित कर दिया है।

यही पशु प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे।।

अर्थात् जो स्वयं का ध्यान रखते हुए परहित को भी महत्व दे, वही वास्तव में मानव कहलाने का अधिकारी है, यदि किसी धन्य धान्य से परिपूर्ण पड़ोसी के पड़ोसी अपनी क्षुधा भी तृप्त नहीं कर पाते तो वह धनी मानव नहीं बल्कि स्वार्थ से भरा हुआ हाड़-मांस वाला पशु ही है जो तनिक संवेदनशील नहीं है तथा वह अपने जीवन को अकारथ कर रहा है, कौड़ी के मोल बेच रहा है, क्योंकि वह तो ताड़ के उस वृक्ष सदृश्य है जिसकी छाया तक अन्य मानवों को त्राण नहीं दे सकती। वह अपनी पूँजी व्यर्थ में गवाँ रहा है। स्वार्थी, असंयमी व्यक्तियों को ओछी निगाहों से देखा जाता है, वह स्वयं ही सब कुछ होते हुए हैरान, परेशान होते रहते हैं, असंयमी व्यक्ति का जीवन लयविहीन, तालविहीन, अनुशासनहीन की श्रेणी में आबद्ध हो जाता है, उसका चित्त सदैव चंचल बना रहता है, वह स्वयं तथा अपने परिवार, समाज

शेष पृष्ठ दो पर

सतत आत्मिक विकास

यह सर्वविदित है कि मानव इस सृष्टि का मणिमुकुट या सिरमौर है। विधाता की इस अद्भुत कलाकृति से देवता तक हतप्रभ रहते हैं, ईश्वर ने इसी मानव को धरा पर उतारकर अपने सृष्टि को रोचक बनाया है। इसी के माध्यम से परमसत्ता ने पृथ्वी को ''स्वर्गादपि गरियसी'' के विशेषण से युक्त किया है। परमपिता के द्वारा वट बीज के समान मनुष्य को उसके स्वयं प्रयत्न के द्वारा विशालकाय सघन छाया वाले वट-वृक्ष में तब्दील कर लेने का श्रेय मानव को ही वरदान स्वरूप प्रदान किया गया है। परन्तु उसे एक निश्चित अवधि तक यानी जीवनपर्यन्त तक ही सभी कार्य करने की छूट है, तथा जो क्षण व्यतीत हो जाता है, उसे पुन: प्रकृति के द्वारा वापस भी नहीं किया जाता। बल्कि वह अतीत बनकर (मनुष्य के अनुभव) रूपी खाद के ही रूप में पुर्नप्रयुक्त हो सकती है तथा हमारे साथ सदैव अतुल्य वर्तमान ही साथ रहता है, जिस पर हमारे भावी जीवन यानी भविष्य की इमारत खड़ी होती है। कहने का तात्पर्य है कि अपने वर्तमान का सदुपयोग सदैव ही दुर्लभ अवसर जानकर किया जाना चाहिए ताकि ईश्वर द्वारा प्रदत्त संसाधनों को अपने लक्ष्य के अनुकूल साधने में कोई कोताही न हो कालान्तर में अफसोस न करना पड़े।

इसी तत्त्व को प्रत्येक नर-नारी तक सर्वग्राही बनाने हेतु अवतारों, सिद्धपुरुषों, अवधूत, औघड़, अघोरेश्वर द्वारा समय-समय पर काल एवं बदलते परिवेश परिस्थिति के अनुसार उन्हें अपने मार्ग पर सदा परिश्रम, पुरुषार्थ से चलते रहने, गतिशील रहने की सीख से ऊर्जित किया जाता है। माँ गुरु के स्मरण से हमारी आत्मिक शक्ति का विकास, पुष्टि एवं सम्वर्द्धन होता है तथा स्वमेव **''असतो मा सद्गमय, तमसो माँ ज्योतिर्गमय, मृत्यों माँ अमृतगमय''** की डगर पर मानव को सच्चा सुख प्राप्त होता है। मानव को यदि अपने सद्परिश्रम के फलस्वरूप इच्छित फल की प्राप्ति हो जाती है तो वह अन्दर से परिपुष्ट होकर और सक्रियता से अपने को सन्मार्ग का पथिक सिद्ध करके अप्रतिम आनन्द प्राप्त करने लगता है, जिससे निरन्तर उसमें आत्मविश्वास, स्वावलम्बन की भावना बढ़ती जाती है।

इसके विपरीत यदि मानव मन का भटकाव आलस्य, प्रमाद, परनिन्दा, ईर्ष्या, काहिली की तरफ हो जाय तो उसे नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ता है इसीलिये कहा जाता है कि इस नश्वर संसार या वर्तमान मृत्युलोक में स्वर्ग तथा नर्क यहीं पर है। मानव मन पर यदि मानव हृदय, विवेक का पहरा है तो इसे पल-पल कुमार्ग का पथिक होने से रोकता है। बड़े से बड़ा अपराधी का हृदय उसके कृत्य अपराध के लिये उसे बारम्बार कोसता स्मरण दिलाता रहता है, इसी को दबाने के लिये, भुलाने के लिये, विवशतावश प्राय: अपराधियों को सोने के पूर्व मदिरा सेवन आवश्यकता बन जाती है, क्योंकि सभी प्राणियों में उपस्थित प्राणमयी भगवती कभी भी अपने सन्तान को कुमार्गगामी देखना पसंद नहीं करती। इसका एकमात्र सरल उपाय है कि हम बुरी लतों, आदतों, निठल्लेपन आदि को जीवन का घुन मानकर उससे एक निरापद दूरी बनाये रखें, ताकि उसका रंचमात्र भी संक्रमण न हो सके, क्योंकि जहाँ दैवीय शक्तियाँ हमें शक्ति सम्वर्द्धन, आत्मिक विकास की ओर खींचती है, वही दानवी शक्तियाँ हमें निरन्तर अधोगामी बनाना चाहती हैं, जो क्रमश: चढ़ाई चढ़ने एवं ढाल से ढकेले जाने सदृश्य ही है। क्योंकि बुरी आदतें, बुरी चीजें, दानवी प्रवृत्तियाँ तो कभी अपना अवयव अथवा दुष्पार्थिव तत्त्वों को छोड़ ही नहीं सकती, जबकि मानव को उसके स्वयं के प्रयास से विरत किया जा सकता है। एक बार स्वामी विवेकानन्द से किसी व्यक्ति ने अपनी बुरी लत के संदर्भ में कहा कि स्वामी जी मुझे यह लत छोड़ नहीं रही है, स्वामी जी ने उसे अपने सानिध्य में रखते हुए एक दिन उसके समक्ष ही चलते-चलते एक खम्भे को पकड़ लिया तथा कहे कि यह हमें छोड़ता नहीं है, वह आदमी आश्चर्य से बोला, स्वामी जी खम्भे को तो आप पकड़े हैं वह तो निर्जीव है। स्वामी जी ने खम्भे को छोड़ते हुए कहा ''ठीक इसी तरह बुरी लत, आदत को तुम पकड़े हो न कि वह, उसे तुरन्त छोड़ो और आजाद विचरण करो।'' ठीक इसी प्रकार हमारे आत्मिक प्रगति में बाधक, लोभ, लालच परनिन्दा, अधिक संग्रह की प्रवृत्ति को हम त्याग दें तथा सरलतापूर्वक सरसता के साथ यदि सात्विकता, शिष्टता, शालीनता, सहनशीलता, साहसिकता का सम्बल लेकर अपने जीवन रूपी रथ को सन्मार्ग पर चलावें तो अवश्यमेव सफलता के रूप में हमारा सतत आत्मिक विकास होता रहेगा और अघोश्वर के सुयोग्य कृपापात्र बनने के अधिकारी सिद्ध होंगे।

C-अघोराचार्य बाबा कीनाराम अघोर शोध एवं सेवा संस्थान् के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक **अरुण कुमार सिंह** द्वारा महादेव प्रेस, बी.3/335, रविन्द्रपुरी कॉलोनी, भेलूपुर, वाराणसी (उ0प्र0) से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पादक : चन्द्र नाथ ओझा

ग्राफिक्स : आशीष कुमार बरनवाल

☎ 0542-2277155.
e-mail–kinaram@rediffmail.com
www.aghorpeeth.org

प्रथम पृष्ठ का शेष

मानव

के लिये बस चलता फिरता दिशाविहीन प्राणी ही है, उस मानव के मस्तिष्क को अस्थिर होने का खतरा सताता रहता है, जिससे वह सुकृत्य के स्थान पर कुकृत्य करते रहने एवं उसके दुष्परिणाम को भुगतने को बाध्य होता है, ऐसा मानव एक प्रकार से नशे में धुत रहता है जिससे वह स्वयं का सही प्रकार आंकलन नहीं कर पाता और न जाने कब, कैसे उसकी विशेष प्रवृत्ति प्रदत्त पूँजी विवेक का अपहरण उसके स्वयं के ही द्वारा उसके कृत्य विशेष से कर लिया गया है, जबकि एक चैतन्य, जाग्रत मनुष्य सतर्कता से आपने कर्त्तव्य पथ पर आरूढ़ रहने के लिये अपनी दिनचर्या, आहार-विहार को अपने लक्ष्य के प्रति दृढ़ होने का नियमन करता रहता है। उसमें रत्ती भर भी शिथिलता उसे स्वीकार्य नहीं होती, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान के द्वारा दिये गये अपने नश्वर शरीर को निर्दिष्ट समयावधि में धन्य कर लेता है, उसका कर्त्तव्य उसे यशस्वी, परोपकारी, परमार्थी की संज्ञा से विभूषित कर देते हैं। ऐसे मानव अपने जीवन को धन्य बनाने के लिये दुर्जनों का, दुर्व्यसन में रत मानव रूपी दानवों के साथ संसर्ग से भी दूर रहते है जिससे विषाणुओं की संक्रामकता से वे भी आक्रान्त न हो जायं, उनके धवल दामन पर ऐसा धब्बा न लगे जिससे अच्छा भला जीवन नारकीय यातना हेतु विवश हो। यह सभी इसी जीवन में अपने कृत्य कार्यों का ही परिणाम होता है, इसीलिये तो महान समाज सुधारक कबीरदास की वाणी आज भी प्रांसगिक है कि **''दास कबीर जतन से ओढ्यो, ज्यों की त्यों धरी दिन्हीं चदरिया, झीनी-झीनी-झीनी रे।''** हालांकि कविवर तुलसीदास जी भी संगदोष से सतर्कता हेतु परामर्श देते है।

वरु भल वास नरक कर ताता।
दुष्ट संग जनि देहुँ विधाता।।

अत: मानव के आकृति के रूप में छिपे दुष्टजनों का संग यर्थाथत: दु:खदायी ही होता है।

मनुष्य को लयबद्ध जीवन जीने के लिये तत्समय के मानव विज्ञानी ऋषि-मुनियों ने वर्ण व्यवस्था को समाज के संचालन के लिये लागू किया था। जो वस्तुत: जातिगत न होकर मनुष्यों के गुणों के आधार पर था।

''चातुवर्णयं मया सृष्टिं गुण-कर्म विभागश:'' जिसे कालान्तर में दुर्भाग्यवश, जातिगत रूप दे दिया गया जिसका खामियाजा अभी तक मानव समाज भुगत रहा है। यद्यपि कम से कम सौभाग्य से वर्तमान काल में हम ऐसी व्यवस्था से उबर रहे हैं तथा समाज में मानव के गुण कर्म, कर्त्तव्य, विशेषता के अनुरूप ही उसे पद-प्रतिष्ठित किया जा रहा है।

मानव चाहे वह विश्व के किसी भूभाग में हो वह चाहे जीवन के किसी क्षेत्र में क्रियाशील हो, यदि वह संतोषी है, महाशनै: से आक्रान्त नहीं है तो वह सद्मानव की श्रेणी में आ जाता है। मानव का गुण, धर्म स्वाभाविक रूप से परिवर्तनशील बना रहता है, चाहे वह गरीब हो, धनी हो, गृहस्थ हो, सन्यासी हो अथवा किसी रूप में विचरण करता हो लेकिन वह यदि मानव है तो एक संतुष्टि की चाह उसमें निरन्तर बनी रहती है। एक ईमानदार श्रमिक गाढ़ी निद्रा का स्वामी होता है उसका वह अद्भुत

शेष पृष्ठ तीन पर

गुरु पूर्णिमा महोत्सव, वर्ष 2015

धर्म बन्धुओं,

अपार हर्ष के साथ सूचित किया जा रहा है कि 'गुरु शिष्य परम्परा' का पवित्र पर्व **'गुरु पूर्णिमा महोत्सव'** अघोर गुरुपीठ अघोराचार्य महाराजश्री बाबा कीनाराम स्थल, क्रीं कुण्ड, रविन्द्रपुरी (शिवाला), वाराणसी में **दिनांक 31 जुलाई 2015 ई0, दिन शुक्रवार** को परम्परागत ढंग से ससमारोहपूर्वक मनाया जायेगा।

इस पुनीत अवसर पर आप सभी सादर आमंत्रित हैं।

–: कार्यक्रम :–

1. प्रात:कालीन आरती के बाद श्रमदान एवं सफाई कार्य तथा प्रभात फेरी।
2. प्रात: 8.30 बजे से पूज्य पीठाधीश्वर जी द्वारा पूजन, अर्चन।
3. प्रात: 9.30 बजे से श्रद्धालुओं द्वारा पूज्य पीठाधीश्वर जी का दर्शन-पूजन।
4. दोपहर 12 बजे से प्रसाद वितरण का कार्यक्रम।
5. सायंकाल 4 बजे से गोष्ठी एवं पूज्य पीठाधीश्वर जी का आशीर्वचन।
6. सायंकाल आरती 7.30 बजे से प्रारम्भ।
7. रात्रि 8 बजे से सांस्कृतिक आयोजन।

मानव

द्वितीय पृष्ठ का शेष

सोना बड़े से बड़े आर्थिक रूप से सुसम्पन्न दुर्व्यसनियों को मयस्सर नहीं होता क्योंकि **'श्रमेव जयते'** ही उसको अलंकारित करता रहता है जिसका विकल्प अर्थ से सम्पन्नता बिल्कुल ही नहीं है। इसीलिये अधिकांश अच्छे स्वास्थ्य के धारणकर्ता शेष समाज के लिये चलते-फिरते सच्चे प्राकृतिक पूँजी के मालिक होते हैं, जिसे स्वयं उन्होंने अपने सुखमय जीवन के लिए अपनाया है। फलत: वह मानसिक रूप से भी मस्त तरोताजा बने रहते है। वह अनावश्यक दिमागी फितरतों से अपने को अलग-थलग रखते हैं एवं एक संतुलन कायम रखते हुए, चिन्ता को तिलांजलि देते हुए चिन्तन करने का अभ्यास करते है, वे समस्याओं से पलायन करने के बजाय उसका निराकरण करने की क्षमता धारण करते रहते है, पलायनवादी दृष्टिकोण न अपना कर संघर्ष का सही रास्ता अख्तियार करते हैं तभी वह सच्चा मानवीय गुणों के अधिकारी होते है। मानव जीवन में प्रत्येक व्यक्ति का सामना असफलता, कठिनाई, मजबूरी से कहीं न कहीं अवश्य होता है, यह अवश्यंभावी है, कभी-कभी अचानक ही ऐसी स्थिति परिस्थिति आती है कि **''किं कर्त्तव्यंविमूढ़''** की स्थिति पैदा हो जाती है, ऐसे में व्यक्ति विशेष का स्वभाव मानसिक, संतुलन, शालीनता रूपी अस्त्रों से ही अचानक आयी परिस्थिति का सामना सद्पुरुष अथवा महिला अपने विवेक से करने में सफल रहती है। संसार के बिगड़े, मानसिक विकृति वाले मनुष्यों को सुधारने, उनसे नाराज होने की अपेक्षा निरन्तर अपने पर ध्यान रखते हुए मन, कर्म एवं वाणी को क्रमश: निर्मल, उत्कृष्ट एवं ललित बनाने पर ध्यान देना श्रेयस्कर है। मानव जीवन में लिप्सा, लालच, तृष्णा, लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेष, अविवेक निष्ठुरता आदि गम्भीर घातक बीमारियों के जीवाणु धीरे से प्रविष्ट होकर हमारे हरे भरे जीवन रूपी बगिया को नष्ट, भ्रष्ट कर देने का सामर्थ्य रखते है जिसके निराकरण हेतु चित्त वृत्ति निरोध को अपनाते हुए उच्चशृंखलता को त्याज्य कर जिम्मेदारी, बहादुरी का ही वरण करना मानवीय कर्त्तव्यों के अन्तर्गत आता है।

हमारे समाज में किसी व्यक्ति को उसके असाधारण विशेष कार्य के लिये यदि जाना जाता है, सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है तो उसमें उस व्यक्ति द्वारा ईश्वर प्रदत्त एक-एक क्षण का सदुपयोग किया जाना ही गोपनीय विशेषता है, उसका निरन्तर, अथक उद्यम ही उसके व्यक्तित्व को चार चाँद लगाता है, कहा गया है कि **''उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथै:''** यानी उद्यमी मनुष्य पर ही लक्ष्मी की कृपा होती है, सुसुप्त मनुष्य का जीवन भाग्यहीनता का सृजन करता है। इसीलिये भगवान बुद्ध के द्वारा भी मानव योनि में दु:ख से मुक्ति के लिए आष्टांगिक मार्ग का उल्लेख किया है, जिसमें मानव के अनुपालनार्थ (१) सम्यक् दृष्टि यानी निरपेक्ष भाव से स्थिति का आंकलन (२) सम्यक् संकल्प यानी समुचित कर्त्तव्य हेतु तैयार करना (३) सम्यक् वाणी यानी दोषरहित शब्द (४) सम्यक् कर्म यानी मर्यादित कार्य (५) सम्यक् आजीविका यानी निर्दोष जीविका (६) सम्यक् व्यायाम अर्थात् उचित परिश्रम (७) सम्यक् स्मृति यानी सार को ग्रहण करना एवं व्यर्थ को उड़ाना, (८) सम्यक् समाधि यानी चित्त, आत्मबोध! उपर्युक्त आठ तत्त्वों को यदि जीवन में उतार लिया जाय, इन्हें आत्मसात करने की कोशिश कर इस पर अमल किया जाय तो कोई कारण नहीं कि मानव जीवन व्यवस्थित न हो, अच्छे परिणाम परक न हो।

मानव जीवन के दुर्लभता को बताते हुए कबीरदास जी समझाते हैं कि—

दुर्लभ मानुष जन्म है, देह न बारंबार।
तरुवर ज्यों पत्ता झड़े, बहुरि न लागे डार।।

यानी एक क्षण का व्यतीत होना उस क्षण का हाथ से जाना ही है। जैसे कि वृक्ष से अलग हुआ पत्ता पुन: वृक्ष में नहीं लग सकता। इसी प्रकार बीतते एक-एक क्षण के सदुपयोग के साथ ही यदि मानव अपने आहार-विहार पर भी सम्यक् दृष्टि रखें तो उससे अप्रत्याशित लाभ होता है, जिसे आयुर्वेद शास्त्र में **''ऋतु भुक मित भुक, हित भुक''** को अपनाने की सलाह दी गई है, यानी ऋतु के अनुसार शरीर के लिये उचित पोषक तथा हितकर भोजन ग्रहण करने को ही अच्छा कहा गया है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मानव के ईमानदारीपूर्वक किये गये सद्प्रयत्नों के बावजूद अभीष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती इसे भी उस परम अज्ञात की कृपा ही समझनी चाहिये, हो सकता है, हमें थोड़ा और तपाकर और सुन्दर स्वर्णाभूषण में बदल दिया जाय जिस परमात्मा की हम सभी सन्तान है, जन्म से लेकर मृत्यु तक की जिम्मेदारी जिसने सम्हाली है, वह हमारे प्राति निष्ठुर, निर्दय हो ही नहीं सकता। अघोरेश्वर के अक्षय भण्डार में अपने सुपात्र योग्य संतानों के लिये वह सब कुछ रखा है एवं उसे सहर्ष लुटाने के लिए वे तैयार भी बैठे है, आवश्यकता मात्र इतनी है कि हम उसे धारण करने के लिए सदा तत्पर हों, अपनी कार्यशैली, सुपात्रता इतनी विकसित कर लें ताकि पारितोषिक देने के लिए लालायित प्रकृति के स्वामी को तद्नुरूप योग्यता एवं आचरण के अभ्यर्थी उपलब्ध हो सके। इसके लिये हमें सदैव गीता के श्लोक—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन:।
मा कर्मफलहेतुर्भुर्मा ते संगोऽसत्वकर्मणि।।

को धारण करते हुए यदि हम इस संसार में निर्विकार भाव से अपना कर्त्तव्य करते रहे तो कोई बाधा, अवरोध आड़े नहीं आ सकती।

प्रकट व प्रच्छन्न हैं सिद्धेश्वर महाप्रभु सिद्धार्थ गौतम राम जी

ऐं कार ह्रीं कार क्रीं कार ओंकार अवधूत प्रभु।
वज्र पिनाक सारंग गाण्डीव की टंकार आप हैं।
डमरू से मिले सप्तस्वर महेश सूत्र से है ज्ञान वंशी, वीणा, मृदंग झाल के झंकार आप हैं।
वेदों के दिव्य प्रकाश, लाइट नूर-ए-इलाही' हैं शिव, राम, श्याम, बुद्ध कलिक अवतार आप हैं,
साकार औघड़ तख्त से अधनाश कर रहे,
सिद्धेश्वर सिद्धार्थ गौतम बड़े सरकार आप हैं।
'परमार' की पुकार बारम्बार सुन रहे
मुरीद-ए मंशा मंजूर हो पालनहार आप हैं।

चिरंतर का शमन चिन्तन की निरंतरता के बाद चिरंतन प्राप्य की प्राप्ति में ही सन्निहित है। सृष्टा ने लिंग भेद के तहत द्वैत दर्शाकर जीव के लिए परीक्षा का प्रबन्ध कर शिक्षा, गुरु दीक्षा गुरु की व्यवस्था दी जिससे उत्तीर्ण होकर जीव सदाशिव, सर्वेश्वरी ऐक्य, अभेद व औघड़, अवधूत पदानुरागी होकर प्रकट प्रस्तुत प्रच्छन्न-अप्रस्तुत का दर्शन कर मोक्ष का अधिकारी बन सकता है। ऐसे में क्रींकुण्ड पीठाश्वर सर्वेश्वरी समूह अध्यक्ष, अघोरेश्वर सिद्धेश्वर महाप्रभु सिद्धार्थ गौतम राम जी समस्त विग्रह शक्तियों के संग्रह समुच्य शक्ति हैं।

परिष्कार व काशीराज परिवार का शापोद्धार– 'अ उ म' स्वर व्यंजन शक्ति सिद्धेश्वर बाबा सिद्धार्थ गौतम राम जी बहिष्कार नहीं परिष्कार संस्कार एवं संस्कृति पालक हैं। अघोराचार्य बाबा कीनाराम द्वारा अभिशप्त काशीराज परिवार रामनगर में नूतन राजप्रासाद भी राम कोप से त्रस्त रहा। यद्यपि बड़े सरकार, अघोरेश्वर महाप्रभु भगवान राम जी कृपा प्रसाद प्रदान करना चाहते थे। (भगवान राम कथामृत पृष्ठ ५७) भैयालाल सर्राफ की कथानुसार नवरात्रि पर राजा साहब रामनगर के मामा द्वारा वस्त्रादि भेंट को बड़े सरकार ने अस्वीकार कर दिया ''हुआँ से हम लोग कुछ लेते देते नहीं'' (भगवान राम कथामृत पृष्ठ ७१) में 'लल्ली मिस्त्री जी' के कथनानुसार सुलेमान के बगीचे में प्रवास के दौरान रामनगर नरेश के मामा ने सरकार का दर्शन किया। कृपा प्रसाद प्राप्ति तो उन्हें हुई मगर बुढ़ऊ बाबा को जेल जाना पड़ा था और बड़े सरकार ने गुरुमूर्ति को जेल से रिहा कराई थी। वर्तमान अघोरेश्वर महाप्रभु सिद्धार्थ गौतम राम ने काशी नरेश सपरिवार को शापमुक्त कर सुखमय जीवन व्यतीत करने का आशीष प्रदान की। बहरहाल, विधि के विधान में संशोधन की शक्ति एकमात्र क्रींकुण्ड पीठाधीश्वर के अधीन है—

आदि व अनन्त भगवंत आशुतोष प्रभु।
स्वयंसिद्ध शंभु सिद्धेश्वर सिद्धार्थ सर्वनाथ हैं
सृष्टि सर्व सत्य सत्यं शिवं सुन्दर-सारभौम प्रभु।
बाबा गौतम राम जी अनाथों के अनाथ हैं।
क्रींकुण्ड नीर पीर गौतम की शपथ लेकर
कहे 'परमार' हर घड़ी बाबा साथ हैं।

जानत तुमहि तुमहिं होई जाई– प्रेम, ज्ञान, योग, वैराग्य, षड् कर्म के कर्तार पीठाधीश्वर महाप्रभु की कृपा वृष्टि उन्हीं की दृष्टि से ही देखा जा सकता है। भगवान सिद्धार्थ गौतम राम की कृपा सर्वमंगलकारी है। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से उपासना विधान गुरु निधि ने नहीं बतायी, बावजूद 'एक राम बाबा गौतम राम' प्रत्यक्ष होता है प्रतिपल। राम, कृष्ण, शिव, शक्ति में जिसकी तस्वीर या मूर्ति हो दत्तात्रेय, कीनाराम, बुढ़ऊ बाबा बड़े सरकार को अर्पण व समर्पण में सिद्धेश्वर गौतम राम जी साकार हो, मौन मुस्कान में मार्गदर्शन देते रहते हैं—

धम्म धर्म ध्वज शक्य सिंह है सिद्धार्थ प्रभु,
शिवाराम, श्याम, गौतम, साकार-निराकार है।
साधन व साधनाविहीन 'परमार' माँगे सिद्धि जिनसे,
एकराम गौतम, दत्त कालू, कीना बड़े सरकार है।

ऐते जन तारे जेते नभ में न तारे है– सृष्टि के श्रीगणेश के साथ ही अनादि व आदि शंभु की लीला स्थली काशी तारनहार रही है। क्रींकुण्ड शक्तिपीठ से अघोरेश्वरीय शक्ति समूह सर्वेश्वरी समूह संज्ञा से पूरे विश्व के प्राणियों को अष्टांग योग विद्या प्रदान कर उद्धार किया है। अघोराचार्य बाबा कीनाराम एवं अघोरेश्वर महाप्रभु भगवान राम ने सनातन सत्य की स्थापना के साथ सृष्टिकर्ता से सामंजस्य स्थापित की। वर्तमान पीठाधीश्वर का परिष्कार मंत्र संस्कार व संस्कृति रक्षक जन प्राणियों का उद्धार कर रहा है। अपने भक्त का मान व सम्मान क्रींकुण्ड के जल व विभूति से रखते हैं माँ गुरु। सारण जिले के दिघवारा नगर क्षेत्रान्तर्गत मुहल्ला चकनूर निवासी शशिकान्त मिश्र, अरुण कुमार, रामबाबू ठाकुर (मीरपुर, भुआल) सुरेश सिंह (मानुपुर) जीवन प्रकाश सिंह (राईपट्टी) ने तो श्रीचरणों में मत्था टेक कर मनोवांछित कामनाएँ पूरी की है। मगर, चकनूर के ओम प्रकाश साह, मीरपुर के राजकुमार साह, जवाहर साह, अशोक पासवान, (राईपट्टी) रामनाथ भगत बाबा के औघड़ भक्त में ही बाबा का दर्शन कर क्रींकुण्ड जल व अखण्ड धुनि विभूति प्राप्त कर रोग शोक मुक्त हैं। राईपट्टी के उमेश भगत काल के गाल से बाहर आये हैं। बेरमो-फुसरो (झारखण्ड), सुभाष नगर कॉलोनी के गुड्डू दूबे, कमलेश महतो, विकास सिंह, सरकारश्री के चरणानुरागी व दर्शनाभिलाषी हैं। बहरहाल—

अवधूत गीता विवेकसार सफलयोनि आप है
दरिया व कस्ती आप हैं पतवार आप हैं
'परमार' को धुनि-भस्मी से भ्रम भागते रहें
दिलदार बाबा गौतम खुद मुख्तार आप हैं।

त्याग हमारे जीने का आधारभूत होगा

अघोरेश्वर महाप्रभु बाबा भगवान रामजी का आशीर्वचन

धर्मबन्धुओं!

समाज में बहुत सी कुरीतियाँ हैं। घर कर गई हैं। अपना जड़ जमा लिया है। संस्कार गत दोष, वह वातावरण जिसमें मनुष्य पल रहा है तथा समाज में प्रचलित कुरीतियों ने मानव को संकुचित एवं कुण्ठित बना दिया है। इन सबसे समाज सुखी नहीं है। एक अजीब तरह की घुटन सब महसूस कर रहे हैं। जिनके साथ सामाजिक बंधन लगे है, जो इन कुरीतियों से छुटकारा नहीं पा सके वे सुखी नहीं है।

इस काशी नगरी में ही देखिये। बहुत से मठ और आश्रम है। उनके संस्थापकों ने एकाकी रहकर जो व्यवस्था दी बाद में उनके स्थान पर आने वालों ने वैसी व्यवस्था नहीं दी। समय के साथ चलने में असमर्थ रहे। वे बंधनों एवं संकुचित दायरे से, समाज में व्याप्त कुरीतियों से संस्कारगत दोषों के कारण अपने को मुक्त नहीं कर सके। जिसका प्रतिफल यह हुआ कि उनकी प्रगति अवरुद्ध हो गई वे नष्ट हो गये।

हमलोग भी अगर समय के साथ नहीं चलेंगे तो उन्हीं मठों और आश्रमों की तरह खत्म हो जायेंगे। संस्था भी नष्ट हो जायेगी। विवाह, मरण, जीवन या अन्य जीवन संस्कारों से निकल कर साल, छः महीना बाद आप सब यहाँ पर सभी भेद भावों को मिटाकर एक साथ बैठते हैं। यहाँ पर सामाजिक कुरीतियों एवं संस्कार गत कर्मों की मान्यता देना मूर्खता है। अगर यहाँ पर भी वे सब बातें प्रवेश करें तो कष्टदायक ही होगा। प्रारम्भ से ही जिसका जो आधारभूत सिद्धान्त है उसकी आलोचना निरर्थक है।

जाति, कुटुम्ब, परम्परा एवं संस्कार गत दोषों से जो विकृति आती है उसको उसी दुनियाँ तक ही रखें। कम से कम जब तक यहाँ रहे उसका परित्याग कर दें। अगर यहाँ पर भी उन सब बातों के साथ आयेंगे तो अहित कर होगा। ईसाई या मुस्लिम संस्थायें क्यों प्रगति पर है? शान्त चित्त से विचार करें। सोचें। वे समय के साथ चलते है। यहाँ पर कुरीतियों को मान्यता न देकर उसे समाप्त करें तो संस्था की प्रगति होगी।

आप पुरुषार्थ करते हैं। उपार्जन करते हैं। अच्छी बात है। परन्तु जो चौबीसों घंटा अपना समय यहाँ देता है, जो सब कुछ त्याग कर हमारे नियमों का पालन करते हुए सेवा कार्य में संलग्न है वह बाहर के लोगों से बहुत अच्छे हैं। जो सब तरह से त्याग करता है उसको आपत काल में मदद करना तथा शादी विवाह, बच्चों की शिक्षा, अथवा चिकित्सा इत्यादि करना सामूहिक उदारता हैं। आलोचना करना ना समझी हैं। अच्छी दृष्टि से देखो। किस शब्द का प्रयोग किसके लिये करते हो उसका असर क्या होता हैं। अपने को तौलो। सोच समझ कर ही कुछ कहना चाहिये।

हमारी मान्यता, कायदा, कानून पर जो ज्यादा अमल करता है उसका ज्यादा हक है। चाहे वह जिस धर्म, वर्ग या जाति का हो। अगर ऐसा दृष्टिकोण रखेंगे तो वे जहाँ भी रहेंगे सहानुभूति रखेंगे। पुरानी परम्परागत करेंगे तो अच्छा विकास, देशव्यापी होने में समय लगेगा। मैं यही कहूँगा कि आप लोग और थोड़ा त्याग कीजिये। त्याग हमारे जीने का आधारभूत होगा। ठीक से जी सकेंगे। घर, परिवार त्याग करने की आवश्यकता नहीं।

आप यहाँ पर स्वात्मा के अनुसन्धान के लिये आते हैं। संकल्प करते हैं संस्था में चार चाँद लगाने को तो उन सभी परम्परागत, संस्कारगत मान्यताओं का परित्याग करें, मान्यता रहने से घर करेगा। नष्ट करेगा। यह भी रोग ही है। रोगी की तरह ही विचारों के पथ्य को ले। जो इन सबसे स्वतंत्र है वे निरोग है। समाज का बंधन नहीं। किसी प्रकार बंधन नहीं, सभी बंधनों से युक्त है, वह अच्छा से अच्छा संस्था का विकास करेंगे।

मैं जो कुछ कह रहा हूँ उस पर बार-बार विचारिये, सोचिये। जिस भाषा या बोली में मैंने कहा है अगर समझ में नहीं आया हो तो अपने मित्रों से परामर्श करें, समझें और सोचें। चेष्टा करके दुर्भावनाओं का तथा संस्कारगत दोषों का जड़ खोद दें।

कायापुर ही काशी है। मन का कण ही मणिकर्णिका है।

धर्मबन्धुओं!

बात काशी की है। काशी के मध्य ज्ञानवापी में विश्वनाथ का निवास है। उसके पास ही मणिकर्णिका भी है। ऐसा कहते हैं कि म्लेच्छों के, यवनों के हाथ नहीं लग पायें, इसलिये ज्ञानवापी के कूप में विश्वनाथ जी कूद गये। योगियों की ज्ञानवापी में, अनुभूति में म्लेच्छों के हाथ नहीं लगने के लिये विश्वनाथ कूद जाते हैं कूप में। मणिकर्णिका में जीवों के पार्थिव शरीर की आहुति होती है। वैसे ही मन के कण में, अण में संकल्प विकल्प उठते हैं। नाना प्रकार की इच्छायें, कामनायें उठती हैं। उनमें सभी की पूर्ति नहीं होती। हजारों में एक, दो की पूर्ति होती है। बाकी उसी मन की कणिका, मणिकर्णिका में विलीन हो जाती है। नष्ट हो जाते हैं। ऐसी अवस्था गुजरती है। इन अवस्थाओं को समझेंगे तो इसी कायापुरी काशी में अपने आप में वह घटता है, पाया जाता है। ढूँढ़ने पर इसकी सत्य अनुभूति होगी।

सुने होंगे। यहाँ से करीब ही विन्ध्याचल है। यही विन्ध्यक सूर्य के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था। एक तरफ प्रकाश दूसरी तरफ घोर अन्धकार हो गया। कोलाहल मच गया। सारी दुनिया संत्रस्त हो गई। भूमण्डल पर कोई नहीं था जो विन्ध्यक से इस संसार को दुःख से छुड़ावें। अगस्त मुनि उसके गुरु थे। यहीं मणिकर्णिका में निवास करते थे। उनकी कुटिया यहीं थी। पुराणों में भी इसका जिक्र आया है। विन्ध्यक किसी की बात नहीं सुनता था। अपने शासक का भी नहीं। भारत का दो खंड करना चाहता था। यहाँ भी वैमनस्य फैलाना चाहता था। पृथ्वी में तो सर्वत्र वैमनस्य था ही। देवता लोग उसके गुरु के पास गये। उनसे विन्ध्यक के बारे में कहा। गुरु विन्ध्यक के पास गये। गुरु भक्त था विन्ध्यक। गुरु में उसकी अपार श्रद्धा थी। गुरु को सामने देख साष्टांग दण्डवत किया उसने। गुरु ने कहा "तथास्तु"। ऐसे ही पड़े रहो, जब तक मैं न लौटूँ। गुरु दक्षिण की ओर चले गये, लौटे नहीं। आज भी विन्ध्यक वैसे ही पड़ा है।

जनक जी का नाम सुने होंगे। उनके गुरु याज्ञवल्क जी थे। एक बार जनक ने कहा कि गुरुदेव त्याग बताइये, करके दिखाइये। याज्ञवल्क जी गृहस्थ महात्मा थे। पुत्र कलत्र था। सुखी सम्पन्न थे। बोले कल देख लेना। लेकिन जब कल देखोगे तो पुनः इस रूप में नहीं देख पाओगे। दूसरे दिन प्रातः कमण्डल लेकर लंगोटी पहन, सभी वैभवों का त्याग कर जनक के यहाँ पहुँचे। जनक ने कहा यह क्या गुरुदेव! आप पूर्व रूप में ही रहें। यह रूप ठीक नहीं। याज्ञवल्क जी नहीं माने। बोले त्याग देखना चाहते थे। देखो! ऐसा कह जंगल की तरफ चल दिये।

जीव ग्रसित है दुःख से। इनकी आवाज अन्दरूनी आत्मा से सुना जायेगा। जो आँसू बहाने वाले हैं, उनका तो बह जाता हैं। परन्तु हम रोते नहीं। कठोर बर्ताव करते हैं। उसके साथ दया नहीं करते। जो अपनी मदद नहीं करता, सहायता नहीं करता, उसकी मदद खुदा भी, ईश्वर भी नहीं करता। आप अपनी मदद करेंगे तो ईश्वर भी मदद करेगा। वह मदद करना चाहे तब भी लाभ नहीं उठा पायेंगे। अपनी मदद करेंगे, धारणा बनायेंगे, आचार-विचार, त्याग लावेंगे तो अपने सहयोगियों की, समाज की भी अच्छी धारणा बनेगी।

आप अपने को हिन्दू कहते हैं। नहीं भी कहते हैं। भारतीय हैं। भारत के रहने वाले हैं, ऐसा भी कहते हैं। शक्ति के बारे में जानते होंगे। बहुत से साहित्य में, पुस्तकों में, देखे होंगे, पढ़े होंगे। सृष्टि के प्रारम्भ होने के बाद से ही शक्ति की उपासना, गायत्री की उपासना प्रारम्भ हुई। बाद में जाति प्रथा के अन्तर्गत कुजाति काढ़ने का भी रिवाज चल पड़ा। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इत्यादि सभी जातियों से लोग बहिष्कृत होते थे। जाति से बहिष्कृत होने पर वे देवता का बँटवारा करते गये। वे अपने-अपने देवताओं का अलग-अलग नामकरण करते गये। वास्तविक में ग्रन्थों को, इतिहास को देखेंगे, समझेंगे, वह शक्ति की परम्परा गत पूजन एवं उपासना की पुष्टि करता है।

हमारे देश में मांस बिक्री नहीं होता था। बलि होती थी। स्वमित्रों, कुटुम्बियों, पड़ोसियों में बाँट कर खाते थे। मुसलमान जब इस देश में आये तो इसे व्यवसाय का रूप दे दिये। मांस बिक्री से रोजी रोटी चलने लगी। मांसाहारी पहले बहुत थे। वशिष्ठ के अथर्ववेद के कौशिक सूत्रों में इसका वर्णन भरा पड़ा है। पहले मद का भी व्यापार नहीं होता था। अंग्रेजों के आने पर इसका व्यवसाय प्रारम्भ हुआ। पूजा में या थके रहने पर इसका प्रयोग होता था।

अघोर सूत्र

☞ **जिसका मन खान-पान और गहने, कपड़े में ही बसा है उसकी स्थिति पशु से भी बदतर है। ईश्वर पर निर्भर रहकर ही दुनिया की गुलामी से छूटा जा सकता है।**

अघोरेश्वर महाप्रभु बाबा भगवान रामजी